नारीवाद के मायने

- किंगसन पटेल

नारीवाद को परिभाषित करना गैरजरूरी लग सकता है, नारीवाद में विशेष दिलचस्पी न लेने वालों को भी लगता है कि वे नारीवाद को जानते हैं। हम बड़ी आसानी से कुछ स्त्रियों या लेखिकाओं पर नारीवादी होने का लेबल लगा दिया करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्रियों के बारे में लिखना - बोलना या स्त्रियों की पक्षधरता नारीवाद का पर्याय है। लेकिन ऐसे समय में जब स्त्रियों की पक्षधरता (घोषणाओं में ही सही) प्रगतिशील होने की शर्त बन गयी हो तब नारीवाद को ठीक - ठीक पहचानना और परिभाषित करना केवल शोधकार्यों की स्पष्टता के लिये ही जरूरी नहीं है, बल्कि इसलिये भी जरूरी है ताकि न तो हम नारीवाद के नाम पर ऊल-जलूल वक्तव्यों और फतवों का विश्लेषण करने लगे और न ही इनके आधार पर नारीवाद की छवि निर्मित करें।

समस्या लेकिन यह है कि नारीवाद को ठीक-ठीक परिभाषित करना जितना ही जरूरी है, उसे परिभाषित करने में उतनी ही लापरवाही बरती गयी है। वृंदा कारात के अनुसार ‘‘नारीवाद एक विचारधारा है, जिसके आधार पर महिलाओं की मुक्ति के प्रयास किये जाते हैं’’[1] और कात्यायनी के अनुसार ‘‘नारीवाद स्त्री मुक्ति-चिन्तन की महज एक विचार-सरणि है, और कुछ नहीं।’’[2] जाहिर है कि ये परिभाषायें बेहद अस्पष्ट हैं। अन्य समस्यायों को छोड़ भी दें तो ये केवल इतना बताती हैं कि नारीवाद एक विचारधारा है जिसका लक्ष्य स्त्रियों को ‘मुक्ति’ दिलाना है, लकिन स्वयं ‘मुक्ति’ का अर्थ स्पष्ट नहीं है, मुक्ति किससे? किस सीमा तक? किस तरह की? स्त्रियों की मुक्ति के प्रयास तो पुनर्जागरणकाल में भी हुए हैं, तब नारीवाद अपने पूववर्ती प्रयासों से भिन्न किस तरह है?

नारीवाद अंग्रेजी के **Feminism** का पर्याय है, और इसलिये इसे परिभाषित करते समय उसके संदर्भ को ध्यान में रखना जरूरी है। नारीवाद को परिभाषित करने में समस्या केवल यह नहीं है कि उसे पूववर्ती चिन्तन से अलग किया जाना चाहिये बल्कि इससे भी बड़ी समस्या यह है कि जिस बौद्धिक और राजनैतिक आन्दोलन को **Feminism** के नाम से जाना जाता है वह समरूप, एकीकृत और अन्तर्विरोधों से मुक्त चीज बिल्कुल नहीं है। स्त्री उत्पीड़न के कारणों और उनके समाधानों की भिन्न समझ रखने के कारण नारीवाद के भीतर न केवल विभिन्न धारायें -उपधारायें मौजूद हैं, बल्कि उन्होंने एक दूसरे की कठोर आलोचनायें भी की हैं। उदारवादी नारीवाद शोषण की जड़े स्त्री और पुरुष के अधिकारों की असमानता में मानते हुए उन्हें समाप्त

करने के लिये कानूनी सुधारों की हिमायत करता है, वहीं समाजवादी नारीवाद इसे उत्पादन और पुनरुत्पादन के बुनियादी श्रम विभाजन का परिणाम मानते हुए व्यवस्था में आमूल परिवर्तन को इसका समाधान मानता है और कानूनी सुधारों को दिखावा मानते हुए बुर्जुआ कहकर उनकी आलोचना करता है।[3] रेडिकल नारीवाद ने इससे एक कदम आगे बढ़ते हुये सभी पूर्ववर्ती सिद्धांतों को ही पितृसत्तात्मक करार दे दिया।[4]

नारीवाद के भीतर मौजूद इस विविधता को रेखांकित करते हुए विल किम्लिका ने लिखा है कि

> *समकालीन नारीवादी सिद्धांत अपने पूर्वधारणाओं और निष्कर्षों दोनों में अत्यन्त विविध है। यह कुछ हद तक अन्य सिद्धांतों के बारे में भी सच है जिसका मैने परीक्षण किया है। लेकिन यह विविधता नारीवाद में कई गुना हो जाती है, इनमें से हर एक सिद्धांत का प्रतिनिधित्व नारीवाद में है। इस तरह यहां उदारवादी नारीवाद, मार्क्सवादी नारीवाद, यहां तक कि स्वेच्छाचारी नारीवाद है। इससे भी आगे सिद्धांत निरूपण के स्वरूप को लेकर एक महत्वपूर्ण आन्दोलन नारीवाद के भीतर चल रहा है, जैसे मनोविश्लेषणात्मक या उत्तर संरचनावादी नारीवादी सिद्धांत, जो कि एंग्लो-अमेरिकन राजनीतिक सिद्धांत की मुख्यधारा के दायरे से बाहर हैं।*[5]

जाहिर है कि इसमें भारतीय या हिन्दी के 'नारीवाद' जैसे हाशिये के प्रयासों को तो अभी नोटिस भी नहीं लिया जाता।

बहरहाल अगर स्थिति ऐसी है, अगर मामला विभेदों और विरोधों तक का है तो फिर इन तमाम बिखरी और अंतर्विरोधी प्रवृत्तियों एवं धाराओं को एक ही नाम कैसे दिया जाता है। नारीवाद शब्द का व्यवहार करते समय इन तमाम विभेदों पर ध्यान नहीं दिया जाता और विभिन्न धाराओं के बीच एक अंतर्निहित एकता की कल्पना कर ली जाती है। इस समस्या को पहचानते हुए अपने लम्बे आलेख में रोजलिंड डेल्मर ने कहा है कि नारीवाद में नजर आने वाली एकरूपता स्त्रियों की स्थिति (दोयम दर्जे) के वर्णन की है, उनके विश्लेषण की नहीं। उन्होंने बड़ी बेबाकी के साथ पूछा है कि इन तमाम धाराओं को एक नाम देने के लिये उनमें किसी न किसी तरह की एकता होनी चाहिए "क्या नारीवाद में कोई राजनीतिक, सामाजिक या सांस्कृतिक अनिवार्य एकता है?"[6]

उक्त महत्वपूर्ण सवाल उठाने के बावजूद डेल्मर कुछ उलझनों का शिकार हो जाती हैं, उनका अपना उत्तर है कि नारीवाद में ऐसी कोई एकता मौजूद नहीं है जिसके चलते उसे कोई नाम दिया जाए। वे अपने लेखन में मौजूद उस अन्तर्विरोध को देख पाने में असमर्थ रही हैं कि एक ओर तो वे उसे एक नाम देने से मना करती हैं, दूसरी ओर लगातार उसके लिये एक ही नाम

(नारीवाद) का प्रयोग करती रहती हैं। वे यह गौर नहीं करती की विशिष्टता बताने वाले विभिन्न शब्द (उदारवादी, समाजवादी, रेडिकल) विशेषण हैं-संज्ञा नहीं।

विविध धाराओं की अपनी विशिष्टताओं के परे उन सभी में मौजूद साझेपन को पहचानने की कोशिश करते हुए सुरान्जिता ने लिखा है

> *नारीवाद महिला उत्पीड़न के विभिन्न पहलुओं को समझने की दिशा में प्रयासरत एक गतिशील और निरंतर परिवर्तित होने वाली विचारधारा है, जिनमें व्यक्तिगत, राजनीतिक और दार्शनिक पहलू भी शामिल हैं, लेकिन, जो एक विचार इन सभी नारीवादी दृष्टिकोणों में समान है वह यह है कि यह सभी मौजूदा स्त्री-पुरूष संबंधों को बदलने की दिशा में केन्द्रित हैं। दूसरे शब्दों में, ये सभी विचारधारायें इस तथ्य से पैदा होती हैं कि न्याय के लिये महिलाओं को स्वतन्त्रता व समानता दी जानी आवश्यक है।*[7]

लेकिन आरम्भ में जो अपत्तियां 'मुक्ति' शब्द के लिये उठाई गयी थी, ठीक वही समस्यायें यहां भी हैं, 'स्वतन्त्रता और समानता' को संदर्भ की सापेक्षिकता में ही समझा जा सकता है, इसीलिये ठीक अगले ही वाक्य में सुरान्जिता स्वतन्त्रता और समानता के स्वरूप इत्यादि पर मौजूद मतभेदों का जिक्र करती हैं। जाहिर है कि नारीवाद ऐसी कल्पना तो नहीं ही कर सकता की कोई निरपेक्ष स्वतन्त्रता होती है। उदाहरण के लिये आज स्त्रियां स्वतन्त्र नहीं हैं, लेकिन पूंजीवाद के अन्तर्गत न तो पुरुष स्वतन्त्र है न स्त्रियां, तो क्या ऐसी स्थिति की कल्पना की जा सकती है कि स्त्रियां तो नारीवाद के प्रयास से 'स्वतन्त्र' हो जायेगी लकिन पुरुष स्वतन्त्र नहीं होंगे! या इसका अर्थ स्वयं पुरूषों से स्वतन्त्रता भी हो सकता है! समझना मुश्किल नहीं है कि यहां स्वतन्त्रता का अर्थ निरपेक्ष स्वतन्त्रता नहीं, बल्कि उतनी ही स्वतन्त्रता से है जितनी कि पुरूषों को मिली है। समानता का सवाल भी ऐसा ही है, क्या इसका अर्थ पुरूषों और स्त्रियों को एक समान बना देना है?

अपने नारीवादी बनने का रोचक और आत्मीय विवरण प्रस्तुत करते हुए डेल स्पेन्डर ने कहा है कि कोई भी वाद मान्यताओं और व्याख्यायों का एक समुच्चय (**A set of explanations**) है, और किसी एक को सच मानने का यह अर्थ नहीं है कि बाकी सभी विश्वदृष्टियां गलत हैं, तो नारीवाद क्या है और वही उचित क्यों है? डेल स्पेन्डर का उत्तर है

> *मैं नारीवादी हूं क्योंकि मै सोचती हूं कि नारीवाद किसी अन्य विश्वदृष्टि जिसे मैं जानती हूं के मुकाबले मान्यताओं के 'बेहतर' समूह पर आधारित है। मैं सोचती हूं कि यह संसार को देखने और व्याख्यायित करने का ज्यादा सही तरीका है। मैं मानती हूं कि सभी मानुष्य समान हैं, कि हम एक दूसरे के साथ सद्भावना से रह सकते हैं और हिंसा, शोषण, वध एवं युद्ध की कोई जरूरत नहीं है। ये मान्यतायें नारीवादी दर्शन में अन्तर्निहित हैं।*[8]

मनुष्य मात्र की मूलभूत (प्रजातिगत) समानता को ध्यान में रखने का अर्थ उन्हें ठोंक-पीटकर एक जैसा बनाना नहीं, बल्कि अधिकारों और अवसरों की समानता प्रदान करना होता है, डेल स्पेन्डर इसीलिये शोषण की समाप्ति को अपने लक्ष्य में सम्मिलित करना नहीं भूलती। स्पेंडर का कहना बिलकुल सही है कि उपरोक्त मान्यतायें पितृसत्तात्मक विचारधारा में अन्तर्निहित नहीं है, लेकिन सवाल यह है कि ये कुछ अन्य विचारधाराओं-कम से कम मार्क्सवाद-में तो अन्तर्निहित हैं ही। फिर उनमें अन्तर क्या है?

उद्देश्यों की यह समानता केवल नारीवाद के ही प्रसंग में नहीं है। आधुनिक काल के ढेर सारे विमर्शों और दर्शनों ने प्रबोधन से या स्वयं मार्क्सवाद से स्वतन्त्रता व समानता जैसे मूल्यों को लेकर अपने लक्ष्यों में (या कम से कम अपनी घोषणाओं में) शामिल किया है और इस तरह उसी नैतिक स्तर का दावा किया है, जिसका मार्क्सवाद करता हैं। लेकिन कौन विमर्श वास्तव में समतामूलक है और कितना, यह तो उनके व्यवहार का विश्लेषण करके ही जाना जा सकता है। बहरहाल मनुष्यों की स्वतन्त्रता को अपना लक्ष्य मानने वाले अन्य विमर्शों और मार्क्सवाद में बुनियादी फर्क दो बातों का है 1-विश्लेषण की पद्धतियों का और 2-सरोकारों के विषय का। जहां मार्क्सवाद के सरोकारों के केन्द्र में सर्वहारा हैं वहीं नारीवाद के केन्द्र में स्त्रियां हैं।

दरअसल नारीवाद को परिभाषित करने में मुश्किलें इसीलिये पैदा होती हैं क्योंकि इसमें स्वतन्त्रता, समानता इत्यादि शब्दों को निरपेक्ष या अमूर्त बना दिया जाता है। अगर हम समाजशास्त्रियों की परिभाषिक शब्दावली का इस्तेमाल करें तो नारीवाद जिस स्वतन्त्रता की हिमायत करता है उसे समझना और स्वीकार करना इतना मुश्किल न रह जाए। कह सकतें हैं कि नारीवाद को आपत्ति अन्तरों (**Differences**) से नहीं गैर बराबरी (**Inequelity**) से है, और यह गैरबराबरी प्राकृतिक नहीं मानव निर्मित है, सामाजिक है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री आंद्रे बेते का निम्नलिखित कथन इस संदर्भ में बेहद अन्तर्दृष्टिपूर्ण है-

> *प्रकृति हमें केवल अन्तरों या क्षमतामूलक अन्तरों के साथ प्रस्तुत करती है। मनुष्यों में ये अन्तर तब तक गैर बराबरी का रूप नहीं लेते जब तक कि उन्हें प्रक्रियाओं द्वारा-जो कि सांस्कृतिक हैं, न की प्राकृतिक-चुना, मूल्यांकित और चिन्हित नहीं किया जाता है। दूसरे शब्दों में, अन्तर केवल मानकों के लागू किये जाने पर ही गैर बराबरी बनते हैं; और एक सामाजिक संदर्भ में गैर बराबरी के बारे में बात करते हुए हम जिस मानक से रूबरू होते हैं, वह प्रकृति द्वारा प्रदत्त नहीं बल्कि विशिष्ट मनुष्यों द्वारा विशिष्ट ऐतिहासिक स्थितियों में सांस्कृतिक रूप से निर्मित की जाती है।*[9]

कहा जा सकता है कि समग्र रूप में नारीवाद वह विचारधारा है जिसके केन्द्र में स्त्रियों की समस्यायें हैं और जो सामाजिक रूप से निर्मित उन अन्तरों को चुनौती देता है जो स्त्री के

अधीनीकरण के लिये जिम्मेदार हैं। इन अन्तरों को खत्म करने का अर्थ न तो यह है कि स्त्री को पुरुष के समान बना दिया जाए और न ही इसका अर्थ अलग-अलग व्यक्तियों के बीच के अन्तरों को मिटा डालना है। इसका अर्थ उन अन्तरों तथा उन्हें जन्म देने वाली व्यवस्था को खत्म करने से है, जो एक समूह को दूसरों से श्रेष्ठ या हीन, प्रभावी अथवा अधीन बनाते हैं। यही वजह है कि उदारवादी नारीवाद शिक्षा, कानून और समाजीकरण की प्रक्रिया पर ध्यान देता है; समाजवादी नारीवाद उत्पादन और पुनरुत्पादन की व्यवस्था को इसका कारण मानता है और तमाम सीमाओं के बावजूद रेडिकल नारीवाद की आलोचना के केन्द्र में पितृसत्ता और उसकी घटक सहयोगी संस्थाएं हैं। नारीवाद की अलग-अलग धाराएं भले ही व्यवस्था के अलग-अलग पहलुओं पर ध्यान देती हों पर समग्रता में यह उस पूरे तन्त्र की ही आलोचना है, जो पुरुषों की तुलना में स्त्रियों को दोयम दर्जा देती है।

पहले के स्त्री केंन्द्रित चिन्तन और आज के नारीवाद के बीच बुनियादी फर्क यह है कि पहले स्त्री और पुरुष के बीच मौजूद सामाजिक अन्तर को प्राकृतिक (और इसीलिये अपरिवर्तनीय) मान लिया जाता था नतीजतन सबल पक्ष से निर्बल पक्ष पर दया करने या उन्हें कुछ सुविधायें दे देने की अपील की जाती थी। इसके उलट नारीवाद ‘महिलाओं को एक राजनीतिक कोटि मानता है’[10] यानी उनकी समस्या का संबंध सत्ता और सामाजिक संरचना से है। नतीजतन सवाल अब उनकी स्थिति में सुधार-परिष्कार करने का नहीं, बल्कि मूलतः अधिकारों का है। इस फर्क को पहचानते हुए रेखा कस्तवार ने लिखा है कि

> *नारीवाद स्त्री जीवन के अनछुए, अनजाने पीड़ा जगत के उद्घाटन के अवसर उपलब्ध कराता है परन्तु उसका उद्देश्य साहित्य एवं जीवन में स्त्री के दोयम दर्जे की स्थिति पर आंसू बहाने और यथास्थिति को बनाये रखने के स्थान पर उन कारकों की खोज से है जो स्त्री की इस स्थिति के लिये जिम्मेदार हैं। वह स्त्री के प्रति होने वाले शोषण के खिलाफ संघर्ष है। स्त्री के शोषण के सूत्र जहां बच्चों को बेटे और बेटी की तरह अलग-अलग ढंग से बड़ा करने और गलत ढंग से समाजीकरण से जुड़ते हैं वहीं प्रजनन व यौन संबंधी शोषण से भी।*[11]

नारीवाद स्त्रियों के लिये उसी तरह अनुकूल है जिस तरह मार्क्सवाद सर्वहाराओं के लिये लेकिन इसका अर्थ यह कभी नहीं निकालना चाहिए कि स्त्रियां स्वभावतः नारीवादी होती है! ‘नारीवाद सहजात दृष्टि न होकर अर्जित दृष्टि है’ और इसे अर्जित करने के लिए पितृसत्तात्मक विचारधारा से अलग वैकल्पिक दृष्टि विकसित करनी पड़ती है, स्वयं पितृसत्ता द्वारा (स्त्रियों/पुरुषों को) मिलने वाली सुरक्षा और सुविधाओं को त्यागना पड़ता है। इसीलिये जहां एक ओर पितृसत्तात्मक मूल्यों को आत्मसात की हुई महिलाएं भी देखने को मिलती हैं तो अपवाद स्वरूप ही

सही लेकिन स्टुअर्ट मिल जैसे नारीवादी पुरुष भी मिलते हैं। स्टुअर्ट मिल की दूर दृष्टि ने बिलकुल ठीक पहचाना था कि

> *पृथ्वी पर एक बेहतर जिन्दगी के मानवीय संघर्ष में स्त्रियों की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता एक प्रमुख और बहुत महत्वपूर्ण लक्ष्य होना चाहिए। इस संबंध में पुरुषों के खोखले भय सिर्फ स्त्रियों को ही नहीं, बल्कि पूरी मानवता को ही बंधनग्रस्त किये हैं-क्योंकि मानवीय प्रसन्नता के आधे झरनों के सूखने से पूरे वातावरण के स्वस्थ्य, संपन्नता और सौन्दर्य पर प्रभाव पड़ता है।*[12]

बहरहाल यह समझना बहुत जरूरी है कि नारीवाद कोई लेबल या फैशन नहीं है, जिसे जो चाहे अपना ले। यह व्यक्तिगत उपलब्धि नहीं, बल्कि सामाजिक कर्म है। यह समझना इसलिये जरूरी है क्योंकि पूंजीवाद बौद्धिक गतिविधियों को भी माल बना देता है, नतीजतन गंभीर चिंतन/विश्लेषण की बजाय लोगों की रुचि छपने, बिकने, प्रकाशित, प्रचारित होने के लिये ज्यादा आतुर होती है। इसके परिणस्वरूप साहित्य, आलोचना और विमर्श में नारेबाजी, फतवेबाजी और विवादों के जरिए पाठकों को आकर्षित करने की कोशिशें होने लगती हैं। इस प्रसंग में केराल ए. स्टेविले का निम्नलिखित कथन गौरतलब है

> *मैं यह विश्वास करना पसंद करूंगी कि दरअसल नारीवादी क्रान्तिकारी सामाजिक परिवर्तन के लिये प्रतिबद्ध हैं, लेकिन विचार करने के लिये अपेक्षाकृत कम सुखद संभावना भी है जो वर्ग की स्थिति की अनदेखी के खतरों को इंगित करती है। संभव है कि अपने को नारीवादी कहने वाले कई व्यक्तियों की दिलचस्पी वर्ग के विशेषाधिकार को बनाये रखने या ख्यातिलब्ध व्यक्ति का दर्जा पाने में हो।.....यह काफी हद तक स्पष्ट है कि कैटी रोइफे, नाओमी वुल्फ, केमिली पेजिला जैसी महिलायें नारीवाद का उपयोग समानता और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने के बजाय किसी प्रकार अपनी पुस्तकों, छवियों और आजीविकाओं को आगे बढ़ाने के लिए विपणन की कार्यनीति के रूप में करती हैं। लेकिन जब तक अनेक नारीवादी अपने विशेषधिकार तथा उन तरीकों, जिनसे हम सभी कम विशेषाधिकृत महिलाओं और पुरुषों के 'शोषण' से फायदा उठाते हैं, को अस्वीकार नहीं करते, नारीवाद एक राजनीतिक परियोजना होने के बजाय एक पेशागत कार्यनीति बन जाने के खतरे में रहेगा।*[13]

नारीवाद पुरुष प्रधान व्यवस्था की आलोचना है, वह पुरुषों की आलोचना नहीं है, क्योंकि ऐसा करते ही हम लैंगिक पहचान को ही प्राकृतिक और प्रधान मानने लगेंगे जो कि स्वयं पितृसत्तात्मक समझ है। जब तक कोई स्त्री-पुरुष के बीच मौजूद कृत्रिम अन्तरों को प्रधानता देता रहेगा, या महिलाओं की गुलामी की किसी भी रूप की उपेक्षा करेगा, वह चाहे और कुछ भी हो नारीवादी नहीं हो सकता।

संदर्भ

---

[1] वृंदा करात, जीना है तो लड़ना होगा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ.9

[2] कात्यायनी, कुछ जीवन्त कुछ ज्वलन्त, परिकल्पना प्रकाशन, नई दिल्ली,2006, पृ.156

[3] साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता (संपा.), नारीवादी राजनीति : संघर्ष और मुद्दे, पूर्वोक्त, पृ.119–12

[4] वही, पृ.52

[5] Will Kymlicka, Contemporary Political Philosophy : An Introduction, Oxford University Press, 2005, p.377

[6] Nancy F. Cott, Juliet Mitchell, Ann Oakley (Ed.), What Is Feminism, Oxford University Press, 1989, p.10

[7] साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता (संपा.), नारीवादी राजनीति : संघर्ष और मुद्दे, पूर्वोक्त, पृ.49

[8] Nancy F. Cott, Juliet Mitchell, Ann Oakley (Ed.), What Is Feminism, Oxford University Press, 1989, p.215

[9] Dipankar Gupta (Ed.), Anti-Utopia: Essential Writings of Andre Beteille, Oxford University Press, 2005, p.316

[10] इलेन मिकिसिन्स वुड, जॉन बेलेमी फॉस्टर (संपा.), इतिहास के पक्ष में, (अनु. तरुण कुमार), ग्रंथ शिल्पी, 2007, पृ. 159

[11] रेखा कस्तवार, स्त्री चिन्तन की चुनौतियां, राजकमल, नई दिल्ली 2006, पृ.25

[12] जॉन स्टुअर्ट मिल, स्त्री और पराधीनता, संवाद प्रकाशन, मेरठ, 2002, पृ.104

[13] इलेन मिकिसिन्स वुड, जॉन बेलेमी फॉस्टर (संपा.), इतिहास के पक्ष में, पूर्वोक्त, पृ.168–89

Email - kingjnu@gmail.com

The Author has given her kind consent to produce this article on the website.